16 हिंद से बाहर हिंदी

● श्री राकेश पांडेय

हिंदी आज विश्व में अपने महत्व को रेखांकित कर रही है। हिंदी को समृद्ध करने में देश के विद्वानों के साथ-साथ अनेक विदेशी और प्रवासी भारतीयों की अहम भूमिका रही है। विदेशी विद्वानों का हिंदी के प्रति प्रेम का दीर्घ इतिहास रहा है। हिंदी को समृद्ध करने में ब्रिटेन के जॉन गिलक्रिस्ट, थॉमस डूएर ब्रूटेन, फ्रेडरिक पिंकाट, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, जॉन फ़र्गुसन, डॉ. मैकग्रैगर, फ्रांस के गार्सा द तासी, अमेरिका के सैमुएल हेनरी केलाग, प्रो. एंस्ट वेंडर, सारा कोहिम, इटली के एल.पी. तेस्सीतॉरी, जर्मनी के डॉ. ईनेस फोर्नेल, पोलैंड के प्रो. रिब्रस्तोफ़ ब्रिस्की, रूस से प्रो. चेलीशेव और वारान्निकोव, जापान के डॉ. तोमियो मिज़ोकामी और बेल्जियम के विद्वान फ़ादर कामिल बुल्के (जो स्वयं को विदेशी नहीं मानते थे) का योगदान महत्वपूर्ण है। इस प्रकार दूसरी ओर वे भारतवंशी हैं जो गिरमिटिया के रूप में लगभग 175 वर्ष पूर्व मॉरीशस, फीजी, त्रिनिदाद, गयाना और सूरीनाम पहुँचे थे। ये लोग विद्वान तो नहीं थे लेकिन अपने साथ रामायण, हनुमान चालीसा, आल्हा आदि ले गए थे। ये अपनी भावी पीढ़ियों के लिए विरासत के रूप में उन्हें संरक्षित भी करते रहे जिसके परिणामस्वरूप आज इन देशों में हिंदी और भारतीय लोक भाषाएँ लोकप्रिय और सुरक्षित हैं। इन देशों में हिंदी के भारतवंशी विद्वानों का आज उल्लेखनीय स्थान है जिसमें फीजी के पं. तोताराम सनाढ्य, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, मॉरीशस के राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', सोमदत्त बखोरी, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, अजामिल माताबदल, रामदेव धुरंधर, धनराज शंभु आदि प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

हिंदी को वर्तमान स्थिति में पहुँचाने के लिए इस ऐतिहासिक तथ्य को रेखांकित करना उचित रहेगा कि भारत में औपनिवेशिक काल के दौरान विदेशी विद्वानों ने भी अपना योगदान दिया था। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी को अपना तंत्र चलाने में भाषा को लेकर अनेक समस्याएँ होने लगी थीं क्योंकि भारत में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित थीं। उस समय मुगल शासन होने के कारण फ़ारसी ही राजकाज की भाषा थी जिसे न तो कंपनी के अधिकारी समझते थे और न ही आम जनता। ऐसी स्थिति में जॉन गिलक्रिस्ट ने देसी भाषाओं का समन्वय कर एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जिसे हिंदुस्तानी भाषा का नाम दिया गया। जॉन गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गाज़ीपुर में अफ़ीम की खेती से जुड़े कर्मचारियों के बीच में रहकर यह ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने 'डिक्शनरी ऑफ़ इंग्लिश एंड हिंदुस्तानी' की रचना की। इस कोश में तत्कालीन प्रचलित अरबी और फ़ारसी के अनेक शब्दों को स्थान दिया गया। इसके साथ ही उन्होंने 1796 में हिंदुस्तानी भाषा के व्याकरण पर भी एक पुस्तक प्रकाशित की। गिलक्रिस्ट का यह ग्रंथ तत्कालीन अंग्रेज़ों को हिंदी सिखाने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। उनकी पहल पर भारतीय साहित्य के अनुवाद कार्य भी हुए। जॉन गिलक्रिस्ट की भाँति ही 'गार्सा द तासी' की विश्व में हिंदी के महत्व को रेखांकित करने में अहम भूमिका रही है। उनके द्वारा हिंदी साहित्य की रूपरेखा का निर्माण सदैव किया जाता है। फ्रांसीसी में लिखी गई उनकी पुस्तक 'हिंदुई और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य की प्रथम कड़ी मानी जाती रही जिसमें कि उन्होंने तुलसी, कबीर, जायसी, सूरदास सहित हिंदी और उर्दू के लगभग सात सौ से अधिक रचनाकारों का उल्लेख किया है।

बेल्जियम के विद्वान फ़ादर कामिल बुल्के के हिंदी प्रेम से सारा हिंदी-जगत परिचित है। वे 1935 में एक अध्यापक के रूप में भारत आए थे और यहीं रम गए। रामचरितमानस से इस कदर प्रभावित हुए कि उन्होंने 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' नामक शोध-प्रबंध लिखकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि ग्रहण की। उन्होंने 'अंग्रेज़ी-हिंदी कोश' बनाया, बाइबल का अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त 'टेक्निकल इंग्लिश हिंदी ग्लोसरी', 'नीलपंछी', 'रामकथा और तुलसीदास', 'मानस कौमुदी' और 'मुक्तिदाता' जैसी कृतियों की रचना कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। साथ ही वे हिंदी जगत के लिए प्रेरक भी बने।

भारत के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार जॉन ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' की रचना के समय गार्सा द तासी द्वारा लिखित विवरणों का भी उपयोग किया था। इसी प्रकार फ्रेडरिक पिंकाट का हिंदी कविता से लगाव था। वे ब्रज भाषा में भी लिखते थे। उन्होंने अपने समय के महत्वपूर्ण साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्रीधर पाठक आदि के साथ भी अपने

संबंध स्थापित किए। हिंदी के लिए वे औरों से विवाद भी ठान लेते थे। उन्होंने हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं का भी अध्ययन किया था। अनेक ग्रंथों के लेखन के साथ उनके 'हिंदी मैन्युअल' का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इसी कड़ी में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन एक चर्चित नाम है। वे भारत में एक अंग्रेज़ अधिकारी के रूप में आए और हिंदी साहित्य से संबद्ध अनेक शोध-कार्य किए जिसके लिए तत्कालीन अंग्रेज़ी हुकूमत ने उन्हें 'फ़ादर ऑफ़ लैंग्वेजज़ ऑफ़ ओवर टाइम' की उपाधि से भी सम्मानित किया। अपने प्रशासनिक दायित्वों के साथ-साथ उन्होंने भारत की विभिन्न बोलियों पर भी कार्य किया है। इसी प्रकार विदेशी विद्वानों की एक लंबी शृंखला है। इन सभी की हिंदी को विश्व में स्थापित करने में एक अहम भूमिका रही है। यह परंपरा जापान के प्रो. के. दोई, प्रो. तोशियो तनाका, तोमियो मिज़ोकामी और रूस के वारान्निकोव, डॉ. ल्युदमीला ख़ख़लोवा और पोलैंड के प्रो. रिब्रस्ताफ़ ब्रिस्की द्वारा आज भी जारी है जिनके शोध कार्यों के आधार पर हिंदी में नित नए आयाम जुड़ रहे हैं। उल्लेखनीय है कि 2008 में जापान की टोक्यो युनिवर्सिटी में हिंदुस्तानी भाषा के शिक्षण के सौ वर्ष पूरे होने पर दो दिवसीय भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया था जिसमें पाकिस्तानी विद्वानों ने भी अपनी सहभागिता दी थी।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी को अपना तंत्र चलाने में भाषा को लेकर अनेक समस्याएँ आने लगी थीं क्योंकि भारत में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित थीं। उस समय मुगल शासन होने के कारण फ़ारसी ही राजकाज की भाषा थी जिसे न तो कंपनी के अधिकारी समझते थे और न ही आम जनता। ऐसी स्थिति में जॉन गिलक्रिस्ट ने देसी भाषाओं का समन्वय कर एक भाषा का निर्माण किया, जिसे हिंदुस्तानी भाषा का नाम दिया गया। जॉन गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गाज़ीपुर में अफ़ीम की खेती से जुड़े कर्मचारियों के बीच में रहकर यह ज्ञान प्राप्त किया।

हिंदी के संदर्भ में यह निर्विवाद है कि विश्व में हिंदी को स्थापित करने में भारतवंशियों की भी अहम भूमिका रही है। भारतीय गिरमिटिया जिन-जिन देशों में ले जाए गए वहाँ पर भी भाषाई संकट था। ये लोग अधिसंख्य रूप में भोजपुरी और अवधी-भाषी थे। प्रवासित देशों में इन्हें सामाजिक समस्याएँ, सांस्कृतिक संकट और खेतों के मालिकों से संवेदनहीनता आदि से जूझना पड़ रहा था। ऐसे में, वहाँ पर भारत के विभिन्न भागों से लाए गए श्रमिकों की संपर्क भाषा अवधी और भोजपुरी स्थापित हुई जिसके कारण वहाँ अन्य भाषाएँ भी भोजपुरी और अवधी शैली में मिश्रित होने लगीं। इससे एक नई भाषा और हिंदी का निर्माण हुआ जो कि भारत की हिंदी से भिन्न थी। इस नई हिंदी को सूरीनाम के लोग 'सरनामी हिंदी' कहते हैं, फीजी के लोग 'फीजीबात' कहते हैं और दक्षिण अफ्रीकी हिंदी को 'नैताली' कहते हैं। मॉरीशस भारत के निकट था इसलिए वहाँ भोजपुरी और खड़ी बोली का अंतर आज तक विद्यमान है। इन भारतवंशी बाहुल्य देशों के कारण हिंदी का विश्व में गुणात्मक रूप से विस्तार हुआ। इस संदर्भ में, इन देशों के कुछ विद्वानों का ज़िक्र यहाँ आवश्यक है, जैसे कि सूरीनाम के मुंशी रहमान ख़ान मुस्लिम होते हुए भी सूरीनाम में रामायण पढ़ाया करते थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। प्राप्त जानकारी के अनुसार, वे रामलीला के इतने शौकीन थे कि कानपुर में रामलीला देखकर लौट रहे थे तो कुछ अरकटिया (गिरमिटिया मज़दूरों के दलाल) उन्हें फुसलाकर कलकत्ता ले गए और वहाँ से सूरीनाम पहुँचा दिया। उन्होंने अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर अनेक दोहों, चौपाइयों को लिपिबद्ध किया और सूरीनाम में रह रहे हिंदुओं को सुनाया और सिखाया; साथ ही मुसलमान भाइयों के लिए इसलामी कुंडलियों की रचना भी की। सूरीनाम में हिंदी-सेवा के लिए बाबू महातम सिंह का अतुलनीय योगदान है। उन्होंने समूचा जीवन हिंदी-सेवा को समर्पित कर दिया। इसी प्रकार पं. हरिदेव सहतू और डॉ. जीत नारायण जिनकी 'दाल भात चटनी' प्रसिद्ध पुस्तक है, भी उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त कवि सुरजन परोही, गीतकार-नाटककार अमर सिंह रमण, जन सुजन नारायण सिंह सुभाग, मार्तिन हरिदत्त लक्ष्मीन श्रीनिवासी सहित भारतवंशियों ने सूरीनाम में आज हिंदी को बचाए

रखा है। फीजी में पं. तोताराम सनाढ्य, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, कुँवर सिंह, जोगेंद्र सिंह कुँवर, पं. अमीचंद, डॉ. सुब्रमणी आदि उल्लेखनीय नाम हैं। डॉ. सुब्रमणी का 'डउका पुरान' इस बात का प्रमाण है कि वहाँ की हिंदी में किस प्रकार अवधी का प्रमुखता से प्रभाव है। इसी प्रकार मॉरीशस के ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर', सोमदत्त बखोरी, मुनीश्वरलाल चिंतामणि सहित अनेक साहित्यकारों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने हिंदी को एक अंतरराष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत इस बात के उदाहरण हैं कि उनके देश के लोग यह आरोप लगाते हैं कि वे मॉरीशस के लेखक न होकर, भारत के लेखक हैं। वे सदैव यही कहते हैं 'मैं हिंदी में लिखूँगा क्योंकि हिंदी मेरी धमनियों की भाषा है।' इसी प्रकार मॉरीशस से रामदेव धुरंधर, अजामिल माताबदल, बीरसेन जागासिंह, इंद्रदेव भोला, हेमराज सुंदर, राज हीरामन, सूरजप्रसाद मंगर, धनराज शंभु, धर्मवीर घूरा, राजेंद्र अरुण, राजरानी गोबीन, जयदत्त जीउत, खेर जगत सिंह, महेश रामजियावन, श्रीमती विनोदबाला अरुण, मोहनलाल मोहित, पूजानंद नेमा, चिंतामणि, प्रह्लाद रामशरण, सत्यदेव टेंगर, सुमति बुधन सहित अनेक नाम हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को मॉरीशस में निरंतर समृद्ध किया है।

भारतवंशियों के हिंदी प्रेम के विषय में एक बात उल्लेखनीय है कि ये लोग हिंदी को धर्म के साथ भी जोड़कर देखते हैं। भारतवंशियों की पीढ़ियाँ आज भी भारत के संदर्भ में उसी काल में जीती हैं जब उनके पूर्वज भारत से बंधक मज़दूरों के रूप में ले जाए गए थे। इसका स्पष्ट उदाहरण प्रवासी भारतीय दिवस के आयोजनों में दिखा। जब पत्रकारों ने कुछ आप्रवासी भारतीयों (एन.आर.आई.) के बच्चों से पूछा कि आप भारत में कहाँ घूमना पसंद करेंगे तो उन्होंने अपने परिचितों और रिश्तेदारों से डिस्कोटेक और पार्टियों में जाने की बात कही। ठीक इसके विपरीत, जब पत्रकारों ने भारतवंशी मूल के बच्चों से यही प्रश्न किया तो उन्होंने हरिद्वार, बनारस सहित अनेक धार्मिक स्थानों पर जाने की इच्छा प्रकट की। इस मानसिकता का प्रभाव भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य पर भी स्पष्ट झलकता है। जो कहानी मॉरीशस में रची जाती है, उसकी पृष्ठभूमि लंदन से बिल्कुल अलग होती है। ये सभी लोग हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। आप्रवासी भारतीयों का संदर्भ आने पर, हिंदी के उन साहित्यकारों का उल्लेख करना आवश्यक है जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद विदेशों (विशेष रूप से अमेरिका, कनाडा, यूरोप आदि) में जाकर बसे हैं। उन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ-साथ हिंदी में भी लिखने का प्रयास किया है। उनमें से कई लोग अच्छा लिख भी रहे हैं। तेजेंद्र शर्मा के अनुसार लंदन में 1990 से लेकर अब तक एक सौ से अधिक पुस्तकें हिंदी में छप चुकी हैं। अमेरिका में भी हिंदी लेखक सक्रिय हैं। ये लोग विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेखकीय योगदान के माध्यम से अमेरिका में हिंदी को लोकप्रिय बना रहे हैं। इटली, न्यू ज़ीलैंड, डेनमार्क, उज़्बेकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका जैसे देश में आप्रवासी भारतीय हिंदी लेखक हिंदी के प्रचार-प्रसार में निरंतर सक्रिय हैं।

हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित करने में हिंदी सिनेमा का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अनेक विद्वानों ने विदेशों में हिंदी-शिक्षण के लिए हिंदी फ़िल्मी गानों को माध्यम भी बनाया है जिसके लिए जापान के प्रो. तोमियो मिज़ोकामी का नाम सर्वविदित है। उन्होंने लगभग 300 फ़िल्मी गानों का हिंदी से जापानी में अनुवाद किया है। जब उन्होंने जापान में मुझे पुस्तक भेंट की तो मैं दंग रह गया। अमेरिका में डॉ. अंजना संधीर ने भी हिंदी-शिक्षण के लिए हिंदी फ़िल्मी गानों का उपयोग किया और फ़िल्मी गानों के आधार पर एक पुस्तक तैयार की। त्रिनिदाद के विषय में तो यह विख्यात है कि वहाँ पर 'सुहानी शाम ढल चुकी, तुम कब आओगे…' एक अघोषित राष्ट्रीय गान का स्थान ले चुका है। किसी भी सामूहिक आयोजन में इस गाने को अवश्य बजाया या गाया जाता है। इसी प्रकार फीजी में 'विलेज सिनेमाघर' में निरंतर भारतीय हिंदी फ़िल्मों को प्रदर्शित किया जाता रहता है। वहाँ पर एक बार स्थानीय कलाकारों ने 'अधूरा सपना' और 'घर परदेस' नाम से हिंदी फ़िल्म भी निर्मित की थी। चीन में भी हिंदी फ़िल्मों का स्पष्ट प्रभाव क्लब और रेस्तोराँ आदि में दिखाई दिया। हिंदी फ़िल्मी गानों की धुनों पर अतिथि नाचते हैं। चीन गुआंगझोऊ के बीजिंग लू बाज़ार में चीनी दुकानों पर खड़ी लड़कियाँ भारतीय ग्राहकों से हिंदी में बात करती और अपना सामान बेचती मिल जाएँगी। उन्होंने सुविधानुसार अपने नाम भी गीता, सीमा, सीता आदि रख लिए हैं।

भारतवंशी देशों में धार्मिक धारावाहिक सदा ही लोकप्रिय होते हैं और आजकल बहुत से समाचार चैनल सीधे प्रवासी भारतीयों के

घर तक पहुँचते हैं। अनेक देशों में हिंदी में समाचार-प्रसारण के अतिरिक्त स्थानीय रूप से निर्मित हिंदी धारावाहिकों का प्रसारण भी होने लगा है जिसमें मॉरीशस प्रमुख है। फीजी टीवी में 'झरोखा' और 'आईना' नाम से हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। फीजी का एक अन्य चैनल एफ.बी.सी., टीवी 'वर्ल्ड ऑफ़ बॉलीवुड' शीर्षक से हिंदी गानों का प्रसारण करता है।

विदेशों में हिंदी प्रसार के क्षेत्र में रेडियो के योगदान को समुचित श्रेय कभी नहीं मिला है लेकिन सिनेमा के साथ-साथ हमें रेडियो को भी नज़र-अंदाज़ नहीं करना चाहिए। फीजी में हिंदी के 'सरगम', 'रेडियो नवतरंग', 'रेडियो बुला फीजी नमस्ते', 'रेडियो मिर्ची' और 'रेडियो फीजी' आदि हिंदी के प्रमुख रेडियो स्टेशन हैं जिन पर हिंदी के कार्यक्रम निरंतर प्रसारित होते रहते हैं। अमेरिका में डॉ. अंजना संधीर ने स्थानीय इंडियन रेडियो 'आर.बी.सी.' पर हिंदी गानों के माध्यम से 'आओ हिंदी सीखें' कार्यक्रम दो वर्ष तक प्रस्तुत किया। त्रिनिदाद में पाँच भारतीय रेडियो के प्रसारण की व्यवस्था की गई थी। त्रिनिदाद के विद्वान डॉ. कुमार महावीर के अनुसार, पाँच भारतीय रेडियो प्रसारण केंद्रों में '90.5 एफ.एम.' पर हिंदी भाषा के कार्यक्रम हैं। '91.1 एफ.एम.', '130 एफ.एम.' और '106 एफ.एम.' पर शिक्षा संबंधी कार्यक्रम प्रसारित होते थे जिनका प्रसारण दोबारा शुरू करने के विचार के बिना ही बंद कर दिया गया। 'स्वर मिलन 91.1' पर एक स्थानीय प्राथमिक/मौलिक विद्यालय के शिक्षक राजिन महाराज संयोजक और प्रसारणकर्ता थे। 1998 में हिंदी का कार्यक्रम 'संगीत 106' पर आठ महीनों तक प्रसारित किया गया और उसका संयोजन फैलिसिटी (प्राथमिक) हिंदू विद्यालय की अध्यापिका सखी शीसुरन ने किया। यह कार्यक्रम सोमवार से शुक्रवार एक बार 5.30 से 6.30 तक प्रसारित किया जाता था और इसका उद्देश्य रात के खाने के समय पूरे परिवार को एक साथ आकर्षित करना था। '103 एफ.एम.' पर हिंदी भाषा के कार्यक्रम को 'हिंदी सीखें' कहा जाता है। इसके निर्माता और प्रसारणकर्ता पंडित रंधीर महाराज थे। 1995 से कई सालों तक यह दिन में तीन बार 7:15 (सुबह), 10:15 (सुबह) और 4:30 (शाम) को पाँच मिनट के लिए प्रसारित किया जाता था। तत्पश्चात यह दिन में दो बार प्रसारित होने लगा और बाद में इसका प्रसारण बंद हो गया। रंधीर और राजिन दोनों ने प्रोफ़ेसर वी.आर. जगन्नाथन (जो कि यू.डब्ल्यू.आई. में हिंदी के व्याख्याता थे) के साथ मिलकर सेंट ऑगस्टाइन रेडियो 106 और 103 पर इस कार्यक्रम का प्रसारण किया था। हिंदी शिक्षा का कार्यक्रम हर रोज़ 90.5 पर तीन मिनट के लिए सुबह 9.30 और 10.30 बजे प्रसारित किया जाता है। इसी प्रकार बी.बी.सी. की हिंदी सेवा, अमेरिका से 'वॉयस ऑफ़ अमेरिका', डेनमार्क में 'सबरंग रेडियो' (जिसे श्री चाँद शुक्ला हरियाबादी चलाते हैं) प्रवासी भरतीयों में बहुत लोकप्रिय है। जर्मनी के 'रेडियो बर्लिन' की अंतरराष्ट्रीय सेवा में दो घंटे हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते रहे हैं। जापान, रूस, नेपाल, मॉरीशस, सूरीनाम, न्यूज़ीलैंड, ऑस्ट्रेलिया के सिडनी और मेल्बर्न आदि शहरों सहित अनेक देशों में रेडियो ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत से बाहर हिंदी की जड़ों को सुदृढ़ करने में समय-समय पर अनेक देशों के हिंदी प्रेमियों ने जो पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं उनका विश्व में हिंदी को पुष्पित और पल्लवित करने में एक महत्वपूर्ण योगदान है। इंग्लैंड में हिंदी पत्र 'हिंदोस्तान' को 1883 में कालाकाँकर नरेश ने अपनी शिक्षा के दौरान प्रकाशित किया था। इसे विदेश में प्रकाशित पहला हिंदी पत्र माना जाता है। साथ ही, गन्ने के खेतों में पनप रही हिंदी और लोकभाषाओं ने भारतवंशियों को इस कदर प्रेरित किया कि इन गिरमिटिया मज़दूरों ने साहित्यिक कृतियों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ कर दिया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मॉरीशस में प्रकाशित हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' है और अन्य कई पत्र-पत्रिकाएँ जो समय-समय पर निकली और बंद हो गईं। 'वसंत', 'आक्रोश', 'पंकज', 'रिमझिम', 'जनवाणी', 'इंद्रधनुष' आदि समकालीन पत्रिकाओं ने मॉरीशस में हिंदी की स्थिति को समृद्ध किया है। इसी प्रकार, सूरीनाम से 'सेतुबंध', 'शांतिदूत', 'जय फीजी' आदि उल्लेखनीय हैं। त्रिनिदाद से 'हिंदी निधि', 'ज्योति' आदि की हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रमुख भूमिका रही है। इसी प्रकार अमेरिका से 'अन्यथा', 'सौरभ', 'विश्व-विवेक', 'विश्व', 'हिंदी जगत', पत्रिकाओं के प्रमुख नाम हैं। ब्रिटेन में 'पुरवाई' पत्रिका ने हिंदी प्रचार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। नॉर्वे से 'स्पाईल' (दर्पण) और 'शांतिदूत' नामक पत्रिकाएँ निकली हैं। बिखराव से पूर्व रूस की पत्रिकाएँ भारत में भी निरंतर पहुँचती थीं। इनमें प्रमुख थीं 'सोवियत भूमि', 'सोवियत दर्पण', और 'यूनोस्त

हिंदी'। जापान से 'ज्वालामुखी', बर्मा से 'प्राची कलश', 'नवजीवन', 'ब्रह्मभूमि', 'आर्य युवक', 'जागृति' मुख्य रूप से प्रकाशित हुई हैं। इसी प्रकार नेपाल से 'समाज', 'पंचायत', 'गोरखा पत्र', 'नव नेपाल', 'जनचेतना' और 'हिमालिनी' के योगदान ने हिंदी जगत को समृद्ध ही किया है। दक्षिण अफ्रीका से स्वयं गांधी जी चार भाषाओं (अंग्रेज़ी, तमिल, गुजराती और हिंदी) में 'इंडियन ओपीनियन' का प्रकाशन करते थे। कनाडा से 'भारती' और 'हिंदी चेतना' भी आप्रवासी भारतीयों में लोकप्रिय रही हैं। प्रवासी भारतीयों के लिए भारत से प्रकाशित होने वाली एकमात्र हिंदी पत्रिका 'प्रवासी संसार' है। इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएँ समय-समय पर निकलीं और बंद होती रही हैं लेकिन इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

हिंदी के संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि यह भारतीय राजनीति का अंग भी है। इसी कारण विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य विदेश मंत्रालय को दिया गया है। विदेश में हिंदी-शिक्षण के लिए विदेश मंत्रालय का अंग भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उपलब्ध तथ्यों के अनुसार कैंब्रिज में हिंदी 150 वर्षों से पढ़ाई जा रही है और पूर्वी यूरोप के कई देशों में लगभग 200 से अधिक वर्षों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन का कार्य हो रहा है। उदाहरणस्वरूप, हंगरी के एत्वोस लोरांद विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विभाग की स्थापना 1873 में हुई थी जहाँ लगभग पिछले 50 वर्षों में हिंदी पठन-पाठन का कार्य चल रहा है। आज विश्व के लगभग 600 से अधिक स्थानों पर हिंदी-शिक्षण का कार्य हो रहा है। श्रीलंका स्थित दूतावास के सहयोग से चलाई जा रही हिंदी की कक्षाओं में 250 से अधिक छात्र सदैव प्रवेश लेते हैं। भारत सरकार द्वारा आयोजित किए जाने वाले विश्व हिंदी सम्मलेन भी आज राजनीति का अंग बन चुके हैं।

विश्व के अनेक देशों में हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है। हिंदी को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए अलग-अलग देशों में वहाँ स्थानीय स्तर पर गठित भारतीय समुदाय के लोगों के समूह और बाद में उनके संस्थागत समूहों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मॉरीशस में यह कार्य गन्ने के खेतों से ही आरंभ हुआ। उत्तर प्रदेश और बिहार के गिरमिटिया श्रमिकों ने भारतीय गाँवों की भाँति बैठका लगाना शुरू किया और हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ हुआ। बाद में अनेक हिंदी-सेवी संस्थाएँ प्रकाश में आईं जिनमें 'हिंदी प्रचारिणी सभा' और 'हिंदी स्पीकिंग यूनियन' अग्रणी हिंदी-सेवी संस्थाएँ हैं। इनके साथ ही 'सनातन धर्म सभा' और 'आर्य समाज' भी हिंदी के लिए अपने स्तर पर प्रयासरत हैं। वास्तव में, हिंदी भारतवंशियों के लिए उनके अस्तित्व का प्रतीक भी है। यहाँ सभी सरकारी कार्य फ्रेंच अथवा अंग्रेज़ी में ही होता है; बोलचाल में 'क्रियोल' का प्रयोग होता है। किंतु अब मॉरीशस की एयर होस्टेस से लेकर किसी कार्यालय या होटल के बैरे तक हिंदी में बोलते मिल जाएँगे। इसी प्रकार सूरीनाम में भी 'सूरीनाम हिंदी परिषद' हिंदी-प्रचार की प्रमुख संस्था है। उसके साथ ही वहाँ बाबू महातम सिंह का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपना सारा जीवन हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दिया। जितनी भी धार्मिक संस्थाएँ हैं (आर्य समाज, सनातन धर्म महासभा, सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था आदि) सभी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसे अनदेखा करना गलत होगा।

भारत से बाहर यदि कहीं सचमुच हिंदी की नींव मज़बूत है तो वह फीजी देश है जहाँ तीन घोषित राजभाषाओं में से एक हिंदी भी है। फीजी में 'हिंदी टीचर्स एसोसिएशन' और आर्य समाज मुख्य संस्थाएँ हैं जिनके माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया जाता है। इसी प्रकार त्रिनिदाद एवं टोबैगो में भी वहाँ की एक प्रमुख संस्था 'हिंदी निधि' है जो भारतीय दूतावास के साथ मिलकर पत्रिका भी निकालती है और हिंदी कार्यक्रम भी आयोजित करती है। इसके अतिरिक्त 'स्वाहा' संस्था और आर्य समाज भी कई स्थानों पर अपनी हिंदी-शिक्षण की गतिविधियाँ संचालित करते हैं। प्रो. हरिशंकर आदेश का नाम त्रिनिदाद में हिंदी-प्रचार के लिए लेना अनिवार्य है क्योंकि उन्होंने 1969 में 'भारतीय विद्या संस्थान' की स्थापना की और इसके माध्यम से हिंदी और भारतीय संगीत की शिक्षा निरंतर देते रहे हैं। गयाना में 'गयाना हिंदी प्रचार सभा' प्रमुख संस्था है जो अपने स्तर पर निरंतर हिंदी प्रचार के लिए प्रयास करती रहती है। इन भारतवंशी देशों के अतिरिक्त अमेरिका में 'विश्व हिंदी न्यास' और 'भारतीय विद्या भवन' प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ हैं। इसी प्रकार कनाडा में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्यक्रम आयोजित करती रहती है। ब्रिटेन में हिंदी प्रचार-प्रसार की अनेक संस्थाएँ हैं जिनमें प्रमुख संस्था यू.के. हिंदी समिति

लंदन, गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय बर्मिंघम, कथा यू.के. लंदन, भारतीय भाषा संगम यॉर्क, भारतीय विद्या भवन, कला निकेतन नॉटिंघम, चैपल, लेस्टर, ग्रेट ब्रिटेन हिंदी लेखक संघ आदि हैं।

लोक भाषाओं से मिलकर मॉरीशस में भोजपुरी, सूरीनाम में सरनामी, फीजी में फीजीबात और दक्षिण अफ्रीका में नैताली हिंदी बन जाती है। इसमें लोक साहित्य की रचना होती है। सूरीनाम के विख्यात कवि श्री हरिदेव सहतू की कविता इस प्रकार है—

'हम तोके का बोली, हम तोके का बोली
बोली बोली, भाषा बोली
अवधि कि भोजपुरी।'
अंत में
'अपन भाषा में एक बात बोली
तो हँस हम्मे बहुत है प्यार महतारी भाषा हमार, महतारी भाषा हमार सरनामी भाषा हमार, सरनामी भाषा हमार।'

इसी प्रकार गिरमिटिया मज़दूर के रूप में सन् 1898 में सूरीनाम पहुँचे मुंशी रहमान ख़ान वहाँ के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। काल और परिस्थितियों का प्रभाव भाषा और साहित्य पर भी पड़ता है। इस प्रभाव से मुंशी रहमान ख़ान भी अछूते नहीं रहे। उन्होंने हज़रत नबी मुहम्मद रसूलिल्लाह के जीवन-चरित को तुलसीदास की रामायण शैली में इस प्रकार रचा है—

'आदि अंत प्रभु का नहीं, नहिं कोई सिरजनहार।
मात पिता प्रभु के नहीं, नहिं कोई पालनहार।॥
जो कहिं नूर रसूल का, नहीं रचत रहमान।
तौ कुदरत रब अपनी, प्रकट न करत जहान॥
नूर की उत्पत्ति जस भई, है यह रब की शान।
है यह नूर रसूल का, कहूँ संक्षेप बखान॥
जिबरा ईल रसूल में, जौन भयउ संबाद।
उन दोनहुँ की वार्ता, करूँ यहाँ इरशाद॥'

उपर्युक्त दोहों में खड़ी बोली का प्रयोग अधिक है जबकि हरिदेव सहतू की कविता में अवधि और भोजपुरी अधिक है क्योंकि हरिदेव सहतू की कविता मुंशी रहमान खान के काल के बाद की है। इसीलिए भाषा अपने लोक रूप में अधिक जीवित है। मॉरीशस में भी भोजपुरी और अवधि-क्षेत्र के लोग अधिक गए थे। ऐसे में वहाँ एक नए समाज के साथ-साथ भाषा ने भी स्वरूप बदला। वहाँ की भोजपुरी को जिसे वे लोग हिंदी कहते हैं, उसमें क्रियोल के अनेक शब्द आ गए हैं। मॉरीशस में लिखी गई एक कविता के अंश इस प्रकार हैं—

'जंगल काट कियो मैदाना
खेत बनाए सहित सिवाना।
उपल बटोर सजाए सीमा खाकर दाल भात अरु पीमा।'

इन पंक्तियों में 'सीमा' का अर्थ रास्ता है और 'पीमा' का मिर्च। सभी शब्द क्रियोल भाषा के हैं जिनका प्रयोग भोजपुरी में किया गया है। इसी प्रकार आज मॉरीशस में वहाँ की हिंदी में अनेक शब्द क्रियोल भाषा से समाहित हो चुके हैं और वह नित नए प्रयोगों के साथ सामने आ रही है। भले ही हम उसे भोजपुरी कहें, अवधी कहें या जो भी कहें लेकिन वे लोग तो इसे हिंदी ही कहते हैं।

5123, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031
pravasisansar@gmail.com
साभार : भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम